एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। ये दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं और सापेक्ष होते हैं।

दूसरी तरफ **ऑस्टिन** जैसे विधिशास्त्री यह भी मानते हैं कि कुछ ऐसे कर्तव्य हैं, जो निरपेक्ष हैं और जिनके प्रति कोई भी अधिकार नहीं होता है।

ऑस्टिन के अनुसार, कर्तव्य सापेक्ष एवं निरपेक्ष दो प्रकार के होते हैं। सापेक्ष कर्तव्यों से उनका तात्पर्य ऐसे कर्तव्यों से है जिनके साथ कोई सहवर्ती अधिकार भी अवश्य ही जुड़ा होता है। निरपेक्ष कर्तव्य ऐसे होते हैं जिनके साथ कोई सहवर्ती अधिकार नहीं होता है।

सामंड के अनुसार, ''कर्तव्य एक ऐसा बंधनकारी कार्य है जिसका विरोधी शब्द अपकार है।''

ग्रे के अनुसार, ''कार्यों'' को करने अथवा न करने की बाध्यता ही कर्तव्य है।''

इसी प्रकार **पैटन** ने सापेक्ष कर्तव्य का समर्थन करते हुए कहा है कि ''अधिकार तथा कर्तव्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व उतना ही असंभव है जैसे पिता के बिना पुत्र का उत्पन्न होना।''

प्रख्यात विधिशास्त्री **डायसी** का मानना है कि ''कर्तव्य आचरण का एक आदेशात्मक प्रतिमान हैं।''

इस प्रकार अधिकांश विधिशास्त्रियों ने 'कर्तव्य' को प्रायः अधिकार के सापेक्ष मानते हुए परिभाषित किया है। ऑस्टिन ने निरपेक्ष या आत्यांतिक कर्तव्यों की भी व्याख्या की है अर्थात् ऐसे कर्तव्य जिनका कोई भी सहवर्ती अधिकार नहीं होता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि चार प्रकार के निरपेक्ष कर्तव्य होते हैं जैसे कि स्वयं के प्रति कर्तव्य, अनिश्चित व्यक्तियों के प्रति कर्तव्य, संप्रभु के प्रति कर्तव्य और उनके प्रति कर्तव्य जो मानव प्राणी नहीं हैं। इस प्रकार ऑस्टिन के निरपेक्ष कर्तव्यों को निम्नरूपेण सारांशित किया जा सकता हैः–

1. व्यक्ति से भिन्न व्यक्ति के प्रति कर्तव्य। जैसे- ईश्वर या छोटे जानवरों के प्रति कर्तव्य।

2. अनिश्चित व्यक्ति के प्रति कर्तव्य। जैसे- समुदाय के प्रति कर्तव्य।

3. आत्मपरक कर्तव्य। जैसे- स्वयं के प्रति।

4. संप्रभु के प्रति कर्तव्य।

किंतु अधिकांश विधिशास्त्रियों ने ऑस्टिन के इस मत की आलोचना की है और उपर्युक्त वर्गीकरण को गलत माना है।

कर्तव्य के प्रकार–विधिशास्त्रीय विवेचन में कर्तव्य के निम्नलिखित वर्गीकरण प्रचलित हैं–

(i) **सकारात्मक कर्तव्य** (Positive Duties) –सकारात्मक कर्तव्य उसे कहते हैं, जिसे करना व्यक्ति का परमदायित्व भी है। जैसे यदि किसी व्यक्ति ने किसी व्यक्ति से ऋण लिया है, तो ऋण को वापस करना उसका सकारात्मक कर्तव्य है।

(ii) **नकारात्मक कर्तव्य** (Negative Duties) – नकारात्मक कर्तव्य वह है, जो किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति के प्रति नहीं करने अथवा कुछ करने से प्रविरत रहने की ओर इंगित करता है। जैसे यदि कोई व्यक्ति किसी भूमि का स्वामी है, तो किसी अन्य व्यक्ति का यह नकारात्मक कर्तव्य है कि वह उक्त भू-स्वामी के भूमि के उपयोग में कोई हस्तक्षेप न करे।

(iii) **प्राथमिक कर्तव्य** (Primary Duties) – प्राथमिक कर्तव्य वह है, जो स्वतः और किसी दूसरे कर्तव्य से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में होता है। जैसे किसी व्यक्ति को चोट न पहुंचाना एक प्राथमिक कर्तव्य है।

(iv) **द्वितीयक कर्तव्य** (Secondary Duties) – द्वितीयक कर्तव्य उसे कहते हैं जिसका प्रयोजन केवल किसी अन्य कर्तव्य को प्रवर्तित कराना होता है। जैसे किसी व्यक्ति को क्षति पहुंचाने के एवज में क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का कर्तव्य।

(v) **सापेक्ष कर्तव्य** (Relative Duties) – ऐसा कर्तव्य जो किसी व्यक्ति के अधिकार के प्रयोग से उत्पन्न होता है, उस व्यक्ति के लिए सापेक्ष कर्तव्य का सृजन करता है, जिसके विरुद्ध किसी अधिकार का दावा किया जाता है।

(vi) **निरपेक्ष कर्तव्य** (Absolute Duties) – ऐसे कर्तव्य जो नैतिक प्रकृति के होते हैं, इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इन्हें करना व्यक्ति की स्वयं की इच्छा पर निर्भर होता है।

अधिकारों के प्रकार (Kinds of Rights) –

विधिशास्त्रीय विवेचन के अंतर्गत विधिक अधिकारों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है–

1. **पूर्ण अधिकार एवं अपूर्ण अधिकार** (Perfect and Imperfect Rights)– पूर्ण अधिकार वे अधिकार होते हैं, जिनका कोई न कोई सह-संबंधी कर्तव्य अवश्य होता है, जिसे विधिक रूप से प्रवर्तित कराया जा सकता है। इसके दावे पर उपचार उपलब्ध होता है।

अपूर्ण अधिकार वह अधिकार है, जो यद्यपि विधि द्वारा मान्य होता है किंतु वह विधि द्वारा अप्रवर्तनीय होता है। जैसे कालवर्जित ऋण के दावे, सिवाय इस अपवाद के कि जहां अधिकार है, वहां उपचार भी है।

2. **सकारात्मक अधिकार एवं नकारात्मक अधिकार** (Positive and Negative Rights) – सकारात्मक अधिकार वह अधिकार होता है जिसका सह-संबंधी एक सकारात्मक कर्तव्य होता है और व्यक्ति जिस पर कर्तव्य अधिरोपित हो, को कर्तव्य पालन के लिए वह व्यक्ति बाध्य कर सकता है, जो अधिकार का दावा करता है।

नकारात्मक अधिकार वह है जिसका सह-संबंधी एक नकारात्मक कर्तव्य होता है।

3. सर्वबंधी अधिकार और व्यक्तिबंधी अधिकार (Rights in rem and Rights in personam) –

जो अधिकार समाज (समुदाय/विश्व) के सभी व्यक्तियों के विरुद्ध होता है, उसे सर्वबंधी अधिकार कहते हैं और जो अधिकार केवल व्यक्ति विशेष के विरुद्ध होता है, उसे व्यक्तिबंधी अधिकार कहते हैं। सर्वबंधी अधिकार प्रायः वस्तु से संबंधित होता है जबकि व्यक्तिबंधी अधिकार केवल संबंधित पक्षकारों के संबंधों पर आधारित होता है। संविदात्मक अधिकार व्यक्तिबंधी अधिकार है। यह विभेद रोमन विधि सिद्धांतों पर आधारित है।

4. **पूर्वगामी और उपचारी अधिकार** (Antecedent and remedial Rights) – इन्हें क्रमशः प्राथमिक एवं द्वितीयक अधिकार, प्रधान एवं गौण अधिकार तथा सारभूत एवं प्रक्रिया संबंधी अधिकार (पोलाक के अनुसार) भी कहा जाता है। जब कोई अधिकार किसी अन्य अधिकार से स्वतंत्र रूप से और अपने लिए ही अस्तित्व में होता है, तो उसे पूर्वगामी अथवा प्राथमिक अधिकार कहते हैं। जब कोई दूसरा अधिकार प्राथमिक अधिकार से जोड़ा जाता है तब उसे उपचारी अथवा द्वितीयक अधिकार कहते हैं। इस विभेद पर विधिशास्त्रियों में काफी मतभेद हैं।

5. **निहित अधिकार और समाश्रित अधिकार** (Vested and Contingent Rights) – जब कोई अधिकार किसी अव्यवहित हित को सृष्ट करता है, तो उसे निहित अधिकार कहते हैं। यह किसी भावी घटना या आचरण पर किसी व्यक्ति में निहित, अंतरणीय तथा दाययोग्य होता है। किसी भावी घटना के घटित होने या न होने पर आधारित होते हुए सृष्ट होने वाला अधिकार समाश्रित अधिकार होता है। इसका सृजन उक्त घटना के यथास्थिति, घटित होने या न होने पर ही निर्भर करता है।

6. **साम्पत्तिक अधिकार और व्यक्तिगत अधिकार** (Proprietary and Personal Rights)– साम्पत्तिक अधिकार का तात्पर्य किसी व्यक्ति के अपनी स्वयं की संपत्ति से संबंधित अधिकार से है। यह उसकी संपदा (Estate) से संबंधित होती है। ये अंतरणीय होते हैं।

सामंड ने साम्पत्तिक अधिकार के बारे में निम्न मत व्यक्त किया है:

''साम्पत्तिक अधिकार की सच्ची कसौटी यह है कि .....क्या यह धन के समतुल्य है; और धन के समतुल्य हो सकता है, यद्यपि इसे किसी मूल्य के लिए बेचा नहीं जा सकता है। धन या कोई वस्तु, जो स्वयं धन के रूप में परिवर्तित की जा सकती है, प्राप्त करने का अधिकार साम्पत्तिक अधिकार है, और इसके अन्य संक्राम्य होते हुए भी इसे इसका कब्जा रखने वाले की संपदा में गिना जाता है।''

व्यक्तिगत अधिकार वे हैं जो किसी करार या संविदा से उद्‌भूत होते हैं। ये व्यक्ति की हैसियत (Status) से संबंधित होते हैं। **पैटन** के अनुसार, ''व्यक्तिगत अधिकार केवल एक अवशिष्ट (Residuary) अधिकार हैं, जो कि साम्पत्तिक अधिकारों को घटाने के बाद शेष बचते हैं।''

7. **स्ववस्तु में अधिकार और परवस्तु में अधिकार** (Right in re propria and Rights in re aliena) – किसी व्यक्ति का अपनी ही वस्तु (स्ववस्तु-re propria) में अधिकार स्व वस्तु में अधिकार कहलाता है और उसी व्यक्ति के अन्य के वस्तु (परवस्तु-re aliena) में अधिकार परवस्तु में अधिकार माना जाता है। यह भी एक प्रकार का सांपत्तिक अधिकार है। मार्गाधिकार इसका मुख्य उदाहरण है।

8. **विधिक अधिकार और साम्यिक अधिकार** (Legal and Equitable Rights)– ब्रिटेन में प्रचलित अधिकारों का यह वर्गीकरण न्यायालयों की मान्यता पर आधारित है। कॉमन लॉ के न्यायालयों के द्वारा मान्य और प्रवर्तनीय अधिकारों को विधिक अधिकार तथा चांसरी न्यायालयों के द्वारा मान्य और प्रवृत्त कराए गए अधिकारों को साम्यिक अधिकार माना गया। भारत में ऐसा कोई प्रभेद मान्य नहीं हैं। यद्यपि भारतीय न्यायालय कुछ मामलों में 'साम्या' के अनुसरण में कुछ अधिकारों को मान्यता प्रदान करते हैं किंतु वे किसी विधि के अनुसरण में ही न कि उसके विरोध में। सामान्यतया किसी विधि या संविधि द्वारा प्रदत्त अधिकार विधिक अधिकार माने जाते हैं और न्यायालय के द्वारा साम्या सिद्धांत के अनुसरण में मान्य अधिकार साम्यिक अधिकार की श्रेणी में आ सकते हैं।

प्रश्नकोश

Q. ''अधिकार युक्तता के नियम द्वारा मान्य और संरक्षित एक हित है। यह एक ऐसा हित है जिसका सम्मान करना कर्तव्य है और जिसकी अवहेलना करना एक दोष।'' यह कथन किस विधिशास्त्री का है?

A. **सामंड** का।

Q. ''अधिकार विधि द्वारा संरक्षित हित हैं'' किसने कहा है?

A. **इहरिंग** ने।

Q. ''मेरे साथ अधिकार विधि की एक संतान है।.....एक प्राकृतिक अधिकार एक ऐसा पुत्र है जिसका कभी कोई पिता नहीं रहा।'' यह किसने कहा है?

A. **पैटन** ने।

Q. विधिक अधिकार के दो मुख्य सिद्धांत कौन-से हैं?

A. 1. **इच्छा सिद्धांत**, एवं 2. **हित सिद्धांत**।

Q. 'संरक्षण सिद्धांत' किससे संबंधित है?

A. **विधिक अधिकार** से (इसे हित का सिद्धांत भी कहा जाता है)।

Q. गयेविर्थ के अनुसार, मानववधोन्माद योजना का अभीष्ट शिकार न बनाए जाने का अधिकार एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कैसा अधिकार है?

A. मानव अधिकार।

Q. ''व्यक्ति तत्वार्थ है, जिसके अधिकार एवं कर्तव्य लक्षण हैं। यह कथन किस विधिशास्त्री का है?

A. **सामंड** का।

Q. किस विधिशास्त्री ने अधिकार को ''तुरुप का पत्ता'' कहा है?

A. **ड्वार्किन** ने।

Q. किसने अधिकार की अवधारणा को ''अनैतिक और समाज के हित के विरुद्ध'' के रूप में स्वीकार है?

A. **ड्यूगिट** ने।

Q. विधिक अधिकार की मुख्य विशेषता क्या है?

A. 1. विधिक अधिकार की विषय-वस्तु, जिसके संबंध में अधिकार है।

2. किसी कृत्य या प्रविरति से अधिकार का संबंध।

3. आबद्ध व्यक्ति।

4. अधिकार धारणकर्ता।

Q. विधिक अधिकार का लक्षण क्या (पूछे गए प्रश्नानुसार) नहीं हैं?

A. 1. अधिकार का नवीयन।

2. विधिक अधिकार का विषय सदैव एक जीवित व्यक्ति होना चाहिए।

Q. संपूर्ण विश्व के प्रति (विरुद्ध) एक सुरक्षित हित को क्या कहा जाता है?

A. **लोकलक्षी अधिकार** (एक सर्वबंधी अधिकार)।

Q. एक अधिकार जो बिना किसी अपवाद के वैध है, क्या कहलाता है?

A. **आत्यंतिक अधिकार**।

Q. सर्वबंधी अधिकार किसके विरुद्ध उपलब्ध होता है?

A. एक निश्चित वर्ग के व्यक्तियों के विरुद्ध।

Q. यह किसने कहा है कि ''एकमात्र अधिकार जो एक व्यक्ति के पास रहता है, वह है, सदैव अपने कर्तव्य का निर्वाह करने का अधिकार।''

A. ड्यूगिट ने।

Q. एक व्यक्तिबंधी अधिकार क्या होता है?

A. एक निश्चित हित जो केवल निश्चित व्यक्तियों के विरुद्ध उपलब्ध है।

Q. कोई व्यक्तिबंधी अधिकार कैसा हित है?

A. एक ऐसा हित जो केवल निश्चित व्यक्तियों के विरुद्ध उपलब्ध है।

Q. किराया प्राप्त करने का अधिकार किस प्रकार का अधिकार है?

A. **साम्पत्तिक अधिकार**।

Q. 'अ' पर 'ब' का पांच सौ रुपये मियाद वर्जित (बाधित) ऋण (कर्ज) है। 'ब' का पांच सौ रुपये का दावा कैसा अधिकार है?

A. **एक अपूर्ण अधिकार**।

Q. ''एकमात्र अधिकार जो कोई व्यक्ति धारित कर सकता है, वह है, कर्तव्य करने का अधिकार है।'' किस विधिशास्त्री ने इसे लिखा है?

A. **ड्यूगिट** ने।

Q. ''अधिकार वह क्षमता या शक्ति होती है, जो दूसरे या दूसरों के कृत्यों या कुछ करने से विरत रहने की यथावत् उपेक्षा करती है।'' किस विधिशास्त्री ने अधिकार की उपुर्यक्त व्याख्या की है?

A. **ऑस्टिन** ने।

Q. किस विधिशास्त्री ने अधिकारों एवं कर्तव्यों का प्रसिद्ध विश्लेषण किया?

A. **होहफेल्ड** ने।

Q. होहफेल्ड के अनुसार 'स्वतंत्रता' का सहवर्ती क्या है?

A. **अधिकारहीनता**।

Q. ''कर्तव्य आचरण का एक आदेशात्मक प्रतिमान है।'' यह कथन किसका है?

A. **डायसी** का।

Q. विधिक कर्तव्य के प्रमुख लक्षण क्या हैं?

A. 1. कर्तव्य का विषय,
2. कर्तव्य की अंतर्वस्तु,
3. कर्तव्य से उत्पन्न परिणाम, एवं
4. अधिकार का विषय।

Q. ''कुछ कर्तव्य निरपेक्ष भी होते हैं'' यह विचार किस विधिशास्त्री के हैं?

A. **ऑस्टिन** के।

Q. किस विधिशास्त्री के अनुसार, चार प्रकार के निरपेक्ष कर्तव्य होते हैं, जैसे कि स्वयं के प्रति कर्तव्य, अनिश्चित व्यक्तियों के प्रति कर्तव्य तथा ऐसों के प्रति कर्तव्य जो मनुष्य नहीं हैं?

A. **ऑस्टिन** के अनुसार।

Q. सूची I को सूची II से सुमेलित करके सही उत्तर बताइए?

सूची I	**सूची II**
A. पूर्ण एवं अपूर्ण अधिकार	1. आर्थिक मूल्य पर बल देना।
B. सकारात्मक एवं नकारात्मक अधिकार	2. प्रवर्तन के क्षेत्र पर बल देना।
C. साम्पत्तिक एवं वैयक्तिक अधिकार	3. अन्य पर प्रभाव पर बल देना।
D. सर्वबंधी अधिकार एवं व्यक्तिबंधी अधिकार	4. लागू होने पर बल देना।

A. A-4, B-3, C-1, D-2।

'व्यक्ति' (Persons)

'व्यक्ति' विधि एवं विधिशास्त्र की, प्रारंभ से ही एक मुख्य विषय-वस्तु रहा है। व्यक्ति के प्रति विधिक संबोधन 'व्यक्तित्व' के रूप में किया जाता है। अध्ययन की सुविधा के लिए व्यक्ति को दो रूपों में अभिव्यक्त किया जाता है–

(i) प्राकृतिक व्यक्ति (Natural Person)

(ii) विधिक व्यक्ति (Legal Person)

प्राकृतिक व्यक्ति का तात्पर्य स्वयं मानव-प्राणी से है। विधिक व्यक्ति का तात्पर्य उस अस्तित्व से है जिसे विधि मान्यता प्रदान करती है और जो स्वयं मानव प्राणी से भिन्न है और विधिक अपेक्षा से उसने व्यक्तित्व ग्रहण कर लिया है।

शब्द **'व्यक्तित्व'** यूनानी शब्द 'परसोना' (Persona) का पर्याय है जिसका तात्पर्य है 'अभिनेता का मुखौटा', अर्थात् किसी निष्प्राण वस्तु या इकाई को एक व्यक्ति के रूप में मुखौटा प्रदान करना। अतः व्यक्तित्व का तात्पर्य किसी ऐसे 'इकाई' से है, जो 'अधिकार और कर्तव्य' धारण करता है। जैसे कोई निगम, मूर्ति, इत्यादि।

यद्यपि मानव-प्राणी को प्राकृतिक व्यक्ति माना जाता है किंतु सभी मानव-प्राणियों को विधिक व्यक्ति नहीं माना जाता है। प्राचीन काल में दासों को केवल चल संपत्ति तथा संन्यासियों को सिविल रूप में मृत माना जाता है। इतना ही नहीं **मनु** ने नपुंसक, पतित, जन्मांध, बहरा, जड़, गूंगा, लंगड़ा, लूला आदि को धन में हिस्सेदार नहीं माना था। इसका तात्पर्य यही था कि उनके विधिक अधिकारों से उन्हें वंचित माना गया था। हालांकि गर्भस्थ शिशु को, भले ही उसने जन्म न लिया हो, तब तक के लिए एक विधिक व्यक्ति माना गया है, जब तक वह जन्म लेता है। यही कारण है कि मृत्युदंड प्राप्त गर्भस्थ महिला के मृत्युदंड को उसके जन्म होने तक स्थगित कर दिया जाता है (**दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 416**)।

यद्यपि व्यक्तित्व व्यक्ति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है किंतु मृतक के शरीर, ख्याति और उसकी संपदा के बारे में अधिकार बना रहता है। किंतु सामान्यतः यह माना जाता है कि व्यक्तित्व जन्म पर प्रारंभ होता है और मृत्यु पर समाप्त हो जाता है।

विधिक व्यक्तित्व (Legal Personality)

जब किसी इकाई को, जो मानव-प्राणी से भिन्न है, अधिकार एवं कर्तव्यों से विभूषित करते हुए कृत्रिम रूप से एक 'व्यक्ति' का स्वरूप प्रदान किया जाता है, तो उस इकाई को 'कृत्रिम व्यक्ति अथवा विधिक व्यक्ति' माना जाता है। ऐसा किया जाना विधिक प्रयोजन के लिए उस समय आवश्यक और अनिवार्य माना जाता है, जब कोई संस्था या इकाई अथवा कंपनी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखते हुए जन सामान्य के बीच में कोई व्यापारिक, आर्थिक अथवा सामाजिक कृत्य संपादित करती है और जिससे उस संस्था, इकाई अथवा कंपनी से अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं।

सामंड के अनुसार ''एक विधिक व्यक्ति, मानव-प्राणी से इतर कोई विषय-वस्तु है, जिसको विधि व्यक्तित्व प्रदान करती है'' और विधि उनको प्राकृतिक व्यक्ति के समान ही अधिकार और कर्तव्य धारण करने वाली इकाई या सत्ता के रूप में मानती है। इस प्रक्रिया में उसे सबसे पहले व्यक्तित्व विधि का एक कल्पितार्थ (Fiction) प्रदान किया जाता है, जो उसकी काया (Corpus) माना जाता है और तब विधि उसका मानवीकरण करती है जिसे उसका मन (animus) कहा जाता है। वस्तुतः उसे विधिक व्यक्तित्व तब प्राप्त होता है जब विधि उसकी एकल सत्ता (Single entity) को मान्यता प्रदान करती है। इस प्रक्रिया को निगमन की संज्ञा दी जाती है।

विधिक व्यक्तित्व का इतिहास एवं विकास

विधिक व्यक्तित्व (निगमन) की कल्पना रोमन एवं प्राचीन हिंदू विधि में पाई जा सकती है।

प्राचीन रोमन समाज का परिवार ''पीटर फेमिलियाज (Peter Familias) के रूप में केंद्रित था, जिसे प्राकृतिक व्यक्तित्व प्राप्त था किंतु उनके पूर्वजों की मृत्यु और उत्तराधिकारी के दाय का प्रतिग्रहण करने के लिए (विरासत हेतु) ''हेरिडेटास जेकेंस'' (Hereditas Jacens) नामक इकाई अस्तित्व में थी, जिसे अधिकांश विधिशास्त्रियों ने 'विधिक व्यक्तित्व' के रूप में निर्वचित किया है। हालांकि इस प्रश्न पर काफी मतभेद है। इसके अलावा रोमन विधि में फिस्कस (Fiscus), कोलेजिया (Collegia), सोशिएटाज (Sociatates), पब्लिकेनोरम (Publicanorum) एवं धार्मिक संस्थान इत्यादि भी विधिक व्यक्तित्व के रूप में अस्तित्व में थे, जिनके अधिकारों का प्रयोग एक प्रतिनिधि के द्वारा किया जाता था। इस प्रकार इहरिंग जैसे विधिशास्त्री मानते हैं कि विधिक व्यक्तित्व का बीजारोपण रोमन विधि में ही हुआ।

भारत में विधिक व्यक्तित्व

प्राचीन भारत में भी रोमन विधि प्रणाली के पेटर फेमिलियाज की भांति **'सहदायिकी' (Coparcenary)** संस्था विद्यमान थी, जो परिवार के मुखिया के द्वारा संचालित होती थी और जिसका अस्तित्व आज भी विद्यमान है तथा उसे भारतीय विधियों में विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। ऐसे ही **'निगम'** जैसी संस्था भी समाज में अस्तित्ववान थी। जैसा कि नारद और वृहस्पति संहिता से स्पष्ट है–

नारद : 1110, 211 के अनुसार ''पाखंडी वर्गों, व्यापार निगमों, व्यापार गिल्डों, संघों, सेना, कुटुम्बों और अन्य संगठनों .....के संबंध में राजा कन्वेंशनों की रक्षा करे'' तथा **बृहस्पति** के अनुसार, 'निगम के किसी सदस्य द्वारा जो कुछ भी प्राप्त

किया जाता है, वह सामूहिक रूप से सभी का होगा'' जैसी उक्तियां स्पष्ट करती हैं कि प्राचीन भारत में भी 'विधिक व्यक्तित्व' की धारणा विकसित हो चुकी थी।

प्रेमनाथ बनाम प्रद्युम्न (1925) I.A. 245 के वाद में 'मूर्ति' (Idol) को एक विधिक व्यक्ति माना गया, किंतु मस्जिद को विधिक व्यक्ति नहीं माना गया है (**मस्जिद शहीद गंज (1940) 67 IA 251 प्री. कां.**)। अत: स्पष्ट है कि भारत में विधिक व्यक्तित्व की अवधारणा काफी प्राचीन है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 79 तथा भारतीय संविधान, 1950 का अनुच्छेद 300 में भारत सरकार एवं 'राज्यों' को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। इसी प्रकार अनेक अधिनियमों में निगमों के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए विधिक व्यक्तित्व की अवधारणा को भारतीय विधि प्रणाली में कायम रखा गया है। संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 5 पैरा II के अनुसार, **'जीवित व्यक्ति'** के अंतर्गत कंपनी या संगम या व्यक्तियों का निकाय, चाहे वह निगमित हो या न हो, आता है तो कंपनी अधिनियम, 2013 के अंतर्गत निगमित कंपनियां विधिक व्यक्ति हैं। इसी प्रकार सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत समितियां भी विधिक व्यक्तित्व धारण करती हैं।

जहां तक आंग्ल विधि का प्रश्न है, इंग्लैंड में दो प्रकार के 'विधिक व्यक्ति' माने जाते हैं–

(1) एकल निगम (Corporation Sole)।

(2) समष्टि निगम (Corporation Aggregate)।

'एकल निगम' का प्रारंभ क्रमगत व्यक्तियों (Successive persons) की निगमित परंपरा से प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में इसे पादरियों के 'पद' के रूप में स्थापित माना गया, जिसे बाद में 'लोक पदों' (Public Office) के लिए और अंतत: 'सम्राट' के लिए अभिहित किया जाने लगा। अत: ब्रिटेन में 'एकल निगम' का सर्वोत्तम दृष्टांत स्वयं सम्राट/साम्राज्ञी का पद है।

ब्रिटेन में प्रचलित सूक्तियां ''राजा कभी नहीं मरता'', 'राजा दीर्घजीवी हो' और 'राजा मर गया' आदि एकल निगम की सत्ता पर ही आधारित हैं। इसी प्रकार संविधि के द्वारा इंग्लैंड के 'पोस्ट-मास्टर जनरल' और 'सॉलिसिटर जनरल' (ट्रेजरी) को भी 'एकल निगम' का अस्तित्व प्रदान किया गया है।

समष्टि निगम का तात्पर्य सह-अस्तित्वधारी व्यक्तियों के एक 'निगमित समूह' से है, जिन्हें विधि के द्वारा व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। इंग्लैंड में तेरहवीं शताब्दी के आस-पास बोरो (Borough) और 'मर्चेंट्स गिल्ड्स' (Merchants guilds) इसके मुख्य उदाहरण थे किंतु इन्हें विधिक व्यक्तित्व प्राप्त नहीं था। ऐसा माना जाता है कि ब्रिटेन में विधिक व्यक्तित्व की संकल्पना सोलहवीं शताब्दी में प्रारंभ हुई, किंतु इसका वास्तविक स्वरूप 1862 ई. में कंपनीज एक्ट के साथ प्रकट हुआ, जिसमें कंपनियों के निगमन का उपबंध था और जिन्हें विधित: विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया।

ब्रिटेन का निर्वचन अधिनियम, 1889 स्पष्ट उपबंध करता है कि ''व्यक्ति अभिव्यक्ति के अंतर्गत, जब तक कि प्रतिकूल आशय प्रतीत न हो, निगमित अथवा अनिगमित व्यक्तियों का कोई निकाय आएगा।'' अत: ब्रिटेन में अब किसी राजकीय चार्टर/संविधि अथवा कंपनी अधिनियम के अंतर्गत विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सकता है। विधि, न्यास, चर्च, विश्वविद्यालय इत्यादि ब्रिटेन के मान्य विधिक व्यक्तित्व हैं।

निगमित व्यक्तित्व के सिद्धांत
(Theories of Corporate Personalities)

किसी इकाई को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के अनेक सिद्धांत भी प्रतिपादित किए गए जो विधिक व्यक्तित्व की प्रकृति, विस्तार एवं प्राधिकार पर आधारित हैं। हालांकि किसी भी सिद्धांत को स्वयं में पूर्ण एवं सर्वमान्य नहीं माना गया है और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालयों ने उपर्युक्त सिद्धांतों को अपने निर्वचन के लिए अपनाया है। संक्षेप में निगमित निकाय के निम्नलिखित सिद्धांत हैं–

1. **कल्पितार्थ सिद्धांत** (Fiction Theory)– इस सिद्धांत के **मुख्य समर्थक ग्रे, सेविग्नी, सामंड, केल्सन** और **डायसी** हैं। इस सिद्धांत को **'कल्पना सिद्धांत'** भी कहते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, केवल मानव-प्राणी को ही उचित रूप में व्यक्ति कहा जा सकता है और केवल कुछ समूहों आदि को केवल विधि की कल्पना (Fiction) के द्वारा कतिपय विधिक प्रयोजनों के लिए व्यक्ति मान लिया जाता है परंतु वे वास्तव में कोई वास्तविक व्यक्ति

नहीं होते हैं। वस्तुतः यह सिद्धांत मूलतः आंग्ल विधि पर आधारित है और उसी के अनुरूप यह सिद्धांत विकसित हुआ है।

ग्रे के अनुसार, विधिक व्यक्तित्व एक अस्तित्व मात्र है जिस पर अधिकार एवं कर्तव्य आरोपित हैं। यही धारणा सामंड की है जिसके अनुसार विधिक व्यक्ति वह है, जो विधि के अधीन अधिकार या कर्तव्य धारण करने के योग्य समझा जाता है। **सामंड** के अनुसार, निगम व्यक्तियों का ऐसा समूह है, जो विधिक कल्पना (Fiction) द्वारा विधिक व्यक्ति के रूप में मान्य किया गया है। इसी प्रकार **केल्सन** ने भी विधिक व्यक्तित्व को मिथक के आलावा कुछ और मानने से इंकार किया है क्योंकि विधिक व्यक्ति में अधिकार और कर्तव्यों से अधिक कुछ अंतर्ग्रस्त होना नहीं माना गया है। इस प्रकार कल्पितार्थ सिद्धांत विधिक व्यक्तित्व को एक कल्पना मात्र मानता है और यह भी कि यह अपराध नहीं कर सकता है।

इस सिद्धांत का सहयोगी सिद्धांत रियायत सिद्धांत (Concession Theory) है, जो यह मानता है कि निगमित निकाय केवल विधि (राज्य) द्वारा अनुज्ञेय सीमा तक ही विधिक व्यक्तित्व रखते हैं।

2. **कोष्ठक सिद्धांत** (Bracket Theory)–इस सिद्धांत को 'प्रतीक सिद्धांत' (Symbolist Theory) भी कहा जाता है। इस सिद्धांत के **मुख्य समर्थक और प्रतिपादक** जर्मन विधिशास्त्री **इहरिंग** हैं। इनके अनुसार, निगम के रूप में सृजित 'विधिक व्यक्तित्व' एक कोष्ठक के समान है, जो मात्र सदस्यों के एकत्रित स्वरूप को प्रदर्शित करता है। विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने का अर्थ है सदस्यों के चतुर्दिक एक कोष्ठक लगा देना जिससे उनको एक इकाई के रूप में माना जाए। यह केवल सुविधा के प्रयोजनों के लिए किया जाता है और विधि कभी भी यह कोष्ठक हटा सकती है।

इस सिद्धांत को **'प्रतीक का सिद्धांत'** कहने के पीछे तर्क यह है कि विधिक व्यक्तित्व केवल एक प्रतीक है जो समूह के हित या प्रयोजन को प्रभावी बनाने में सहायता करता है।

होहफेल्ड ने कोष्ठक के उपर्युक्त सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा है कि केवल मानव-प्राणियों के ही अधिकार और कर्तव्य होते हैं और निगमित व्यक्तित्व केवल एक प्रक्रिया संबंधी रूप है जो तात्कालिक प्रयोजन के लिए विधिक संबंधों के एक जटिल समूह के एक सुविधापूर्ण तरीके से कार्यान्वयन के लिए प्रयोग किया गया है।

3. **यथार्थवादी सिद्धांत** (Realist Theory) – इस सिद्धांत को 'कायिक सिद्धांत' (Organic Theory) भी कहा जाता है। इसके **मुख्य समर्थक एवं प्रतिपादक** जर्मन विधिशास्त्री **गीयर्क** हैं, जिनका मेटलैंड और पोलाक ने समर्थन किया है। इस सिद्धांत के अनुसार, किसी निगम में वे सारी विशेषताएं विद्यमान होती हैं, जो एक प्राकृतिक व्यक्ति की होती हैं। इसलिए विधिक व्यक्तित्व उसी अर्थ में यथार्थ होते हैं जिस अर्थ में मानव-प्राणी यथार्थ हैं। विधिक व्यक्तित्व न तो कल्पित होता है और न ही व राज्य की मान्यता पर निर्भर करता है। अतः किसी निगम में भी वास्तविक इच्छा, वास्तविक मन और कार्य की एक वास्तविक शक्ति होती है।

यथार्थवादी सिद्धांत से अत्यधिक घनिष्ठता रखते हुए एक अन्य **'संस्थात्मक सिद्धांत' (Institutional Theory),** जिसके प्रवर्तक फ्रांसीसी विधिशास्त्री हौरु हैं, ने समष्टिवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा है कि निगमित निकाय (विधिक व्यक्तित्व) के तहत व्यक्ति का संस्था में विलय हो जाता है और वह इसका अंग हो जाता है, किंतु इस सिद्धांत का निर्वचन अनेक अर्थों में किया गया है।

4. **प्रयोजन सिद्धांत** (Purpose Theory) – इस सिद्धांत के **प्रवर्तक** जर्मन विधिशास्त्री **ब्रिन्ज़** हैं, जिनका मानना है कि केवल मानव-प्राणियों का ही व्यक्तित्व होता है और विधिक व्यक्ति बिल्कुल ही व्यक्ति नहीं होते हैं। वे केवल कर्ताशून्य संपत्तियां हैं, जो कतिपय प्रयोजनों के लिए अभिप्रेत हैं। वस्तुतः यह सिद्धांत केवल जर्मन विधि के स्टिफंग (Stifung) और रोमन विधि के 'विरासत' के स्पष्टीकरण के लिए प्रतिपादित किया गया था। यह आंग्ल विधि में लागू नहीं होता है।

निगमन के लाभ (Advantage of Incorporation)

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि किसी इकाई का निगमन उस पर अधिकार और कर्तव्य अधिरोपित करने के लिए ही किया जाता है और यही अधिकार और कर्तव्य किसी निगमित संस्था को अनेक लाभ प्रदान करते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. निगमन का पहला लाभ यह है कि निगमित संस्था एक स्वतंत्र विधिक व्यक्ति होने के कारण उसके द्वारा किसी अन्य 'व्यक्ति' (प्राकृतिक या विधिक) के विरुद्ध वाद लाया जा सकता है अथवा उसके विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा वाद लाया जा सकता है और उसे विधि के द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है, किंतु ऐसा उस निगमित संस्था के प्रतिनिधि के द्वारा या उसके विरुद्ध ही किया जा सकता है न कि उसके सभी सदस्यों के द्वारा या विरुद्ध।

2. निगमित संस्था के अन्य सदस्य अपने अंशों अथवा कार्यों के प्रभाव व परिणाम के अनुसार ही दायी होते हैं।

3. निगमित संस्था के सदस्य अधिकार एवं दावों को अंतरित कर सकते हैं अथवा उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी उसके लाभों का दावा कर सकते हैं।

4. निगमित इकाई का स्वतंत्र जीवन और अस्तित्व होता है और उसे विधिक प्रक्रिया के द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

5. निगमन से व्यापारिक गतिविधियों को एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। आधुनिक युग में कंपनियों, संस्थाओं एवं समितियों का अधिकाधिक विस्तार एवं राष्ट्र निर्माण में योगदान निगमन के द्वारा ही संभव हो सकता है।

सोलोमन बनाम सोलोमन एंड कंपनी लिमिटेड, (1897) A.C. 22 के वाद में हाउस ऑफ लार्ड्स ने अभिनिर्धारित किया है कि कंपनी और उसके सदस्यों का एक-दूसरे से पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस वाद में कंपनी की आंतरिक गतिविधियों (निगमित व्यक्तित्व का पर्दा) को सार्वजनिक करने की मांग की गई थी, जिसे न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया।

वस्तुतः जब कंपनियों में अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाता है, तो अनेक विवाद उत्पन्न होने लगते हैं और निगमित कंपनी के पीछे कार्यरत वास्तविक व्यक्तियों की कार्यवाहियों पर विचार करने की प्रक्रिया 'निगमन का पर्दा हटाना' कहा जाता है। इस सिद्धांत का प्रयोग और कार्यान्वयन **डैमलर कंपनी बनाम कॉन्टीनेंटल टायर कंपनी** (1916) 2A.C 307 के वाद में किया गया जिसमें हाउस ऑफ लार्ड्स ने अभिनिर्धारित किया कि कंपनी की वास्तविक प्रकृति का अवधारण करने के लिए निगमन का पर्दा हटाना आवश्यक होता है।

कंपनी को न्यायालय ने इसी सिद्धांत के आधार पर एक शत्रु कंपनी अभिनिश्चित किया क्योंकि इसके अधिकांश अंशधारी और स्वयं निदेशक भी शत्रु (प्रथम विश्व युद्ध में जर्मन) थे। इसी प्रकार एक अमेरिकी वाद **यू.एस. बनाम लेहाई बेली रेल रोड कं.,** 220, N.S. 257 में भी विधिक व्यक्तित्व का अवगुंठन (पर्दा) हटाया गया।

निगमन के विभिन्न दृष्टांत

विभिन्न न्यायिक विनिश्चयों के द्वारा अनके इकाइयों और संस्थाओं को विधिक व्यक्तित्व प्रदान अथवा अस्वीकार किया गया है, जिनका विवरण निम्नवत है–

1. **प्रेमनाथ बनाम प्रद्युम्न (1925) L.R. 52**– मूर्ति एक विधिक व्यक्ति है। किंतु एक हिंदू देव प्रतिमा का धर्मदाय में लाभकारी हित नहीं होता है और वास्तविक हिताधिकारी पुजारी होते हैं (**देवकी नंदन बनाम मुरलीधर,** 1956)।

2**. मस्जिद शहीदगंज (1940) 67 I.A. 251**– प्रिवी काउंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि मस्जिद के द्वारा या उसके विरुद्ध वाद नहीं लाया जा सकता है क्योंकि वह विधि की दृष्टि में कृत्रिम व्यक्ति नहीं है।

3. **गंगा सहाय बनाम भारत मान, AIR 1950 इला. 480–** समितियां विधिक व्यक्तित्व धारण करती हैं।

4. **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर बनाम सोमनाथ दास AIR, 2000, SC**– गुरुग्रंथ साहिब एक विधिक व्यक्ति हैं।

निगम के दायित्व (Liability of Corporation)

जिस प्रकार विधिक व्यक्तित्वधारी कोई संस्था अधिकारों का दावा कर सकती है, ठीक उसी प्रकार उसका दायित्व भी नियत होता है। इनमें कुछ उसके कर्तव्य की श्रेणी में आते हैं, तो कुछ उसके उत्तरदायित्व की, जिन्हें निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **संविदात्मक दायित्व** (Contractual liability) – चूंकि निगम का अस्तित्व उसके प्रयोजनों के लिए और उसके स्वयं के ज्ञापन तथा संविधि की सीमाओं के अधीन ही कायम रहता है। अतः वह अपने संविदात्मक दायित्व से उसी प्रकार आबद्ध होता

है जैसे कि संविदा का कोई पक्षकार होता है। इस निमित्त निगम का कार्यकारी/अभिकर्ता प्रतिनिधि निगम के एक पक्षकार की हैसियत से उत्तरदायी होता है।

एशबरी रेलवे कैरिज एंड आयरन कं. बनाम रिच (1875) L.R., 7 H.L. 563 के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी निगम के संगम-ज्ञापन (Memorandum of Association) के बाहर की कोई संविदा शक्ति-बाह्य और शून्य होती है, भले ही उस पर सभी सदस्य सर्वसम्मति से सहमत हुए हों। ऐसा कार्य (संविदा) अनुसमर्थन के योग्य नहीं होता है।

2. **अपकृत्यात्मक दायित्व** (Tortious Liability) – अपकृत्य विधि में किसी कंपनी/निगमित निकाय का दायित्व प्रतिनिहित दायित्व (Vicarious liability) के रूप में होता है, जिसका मुख्य सिद्धांत यह है कि निगम/कंपनी का प्रमुख अपने अभिकर्ता/सेवकों के अपकृत्यात्मक कृत्यों के लिए मुख्य रूप से दायी होता है, यदि वह कृत्य नियोजन के अनुक्रम में कार्य संपादित करते हुए किए गए हैं।

विनफील्ड का मानना है कि ऐसे मामलों में निगम एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में उत्तरदायी होता है।

कैम्पबेल बनाम पैडिंगटन कॉर्पोरेशन (1911) 1 K.B. 869 के मामले में ब्रिटेन की किंग्स बेंच ने अभिनिश्चित किया है कि निगम अपकृत्यात्मक कृत्य के लिए दायी होता है। भारत में भी यही सिद्धांत लागू है और अनेक वाद भी इस पर निर्णीत हैं।

3. **निगम का आपराधिक कार्यों के लिए दायित्व** (Criminal liability of a Corporation)

चूंकि निगमित निकाय द्वारा कार्य स्वयं उसके द्वारा नहीं अपितु उसके प्रतिनिधियों के द्वारा संचालित किए जाते हैं (क्योंकि स्वयं निगम एक ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो अपराध के मुख्य तत्व 'दुराशय' से युक्त होकर कोई अपराध करे), इसलिए दंड के प्रयोजन से आपराधिक दायित्व के लिए संबंधित निगम के प्रतिनिधि, जिसने अपराध किया, को उत्तरदायी माना जाता है, किंतु यदि उत्तरदायित्व जुर्माने के रूप में है, तो निगम का कोष उत्तरदायी माना जा सकता है।

मूर बनाम ब्रेसलर लि. (1944) 2 AII.E.R.515 के वाद में कंपनी को इसके सचिव के आपराधिक कार्य के लिए दोषी माना गया था। इसी प्रकार **डी.पी.पी. बनाम केन्ट एंड सक्सेज कॉन्ट्रैक्टर्स** लि. (1944) के मामले में कंपनी के प्रबंधक ने पेट्रोल कूपन प्राप्त करने के लिए असत्य विवरणी प्रेषित की थी, जिसमें न्यायालय ने अभिनिश्चित किया कि कंपनी ने अपने प्रबंधक के माध्यम से अपराध किया था।

प्रश्नकोश

Q. ''विधिक व्यक्तित्व एक अस्तित्व है जिस पर अधिकार एवं कर्तव्य आरोपित किए जाते हैं'' यह कथन किस विधि-शास्त्री का है?

A. **ऑस्टिन** का।

Q. ''अजन्में शिशु का विधिक अस्तित्व नहीं होता है, क्योंकि वह अधिकार रहित होता है।'' यह किसने कहा है?

A. **पैटन** ने।

Q. विधिक व्यक्तित्व के मुख्य सिद्धांत कौन-से हैं?

A. 1. कल्पितार्थ सिद्धांत,
2. कोष्ठक सिद्धांत,
3. यथार्थवादी सिद्धांत, तथा
4. प्रयोजन सिद्धांत।

Q. प्रसिद्ध विधिशास्त्री इहरिंग ने विधिक व्यक्तित्व से संबंधित कौन-सा सिद्धांत प्रतिपादित किया?

A. **कोष्ठक का सिद्धांत** (ब्रेकेट का सिद्धांत)।

Q. यथार्थवादी सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?

A. **गीयर्क** ने।

Q. कल्पना सिद्धांत विधिशास्त्र के किस अवधारणा से संबंधित है?

A. **विधिक व्यक्ति की अवधारणा** से।

Q. 'अजन्में शिशु के कर्तव्य की दशा में विधिक व्यक्तित्व विद्यमान रहता है।' यह कथन सत्य है अथवा असत्य?

A. **सत्य**।

Q. कौन-से इकाई विधिक व्यक्तित्व (पूछे गए प्रश्नानुसार) धारण करते हैं?

A. 1. मूर्ति,
2. गुरुग्रंथ साहिब,
3. कंपनी,
4. मंदिर में भगवान शिव की मूर्ति,
5. भारत संघ,
6. भारत के राष्ट्रपति,
7. लोक सेवा आयोग उत्तर प्रदेश,
8. निगम,
9. एक मृत व्यक्ति।

Q. कौन विधिक व्यक्ति की श्रेणी में नहीं रखे (पूछे गए प्रश्नानुसार) जा सकते हैं?

A. 1. मस्जिद,
2. पशु,
3. पत्थर,
4. मंत्रिमंडल,
5. न्यायाधीश,
6. कोई कोष,
7. उ.प्र. सहकारी आवास समिति का अध्यक्ष,
8. इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति,
9. नेशनल थर्मल पॉवर कॉर्पोरेशन का प्रबंध निदेशक।

Q. किस वाद में भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णीत किया है कि 'गुरुग्रंथ साहिब' एक विधिक व्यक्ति हैं?

A. **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर बनाम सोमनाथ दास, 2000 AIR SC. के मामले में**।

Q. प्रिवी काउंसिल ने किस वाद में अभिनिश्चित किया है कि ''मस्जिद न तो वाद दायर कर सकती है, न ही इसके विरुद्ध वाद दायर किया जा सकता है, क्योंकि विधि की दृष्टि में वह 'कृत्रिम' व्यक्ति नहीं है''?

A. **मस्जिद शहीदगंज (1940) 67 I.A. 25 के मामले में**।

Q. किस एक वाद में न्यायालय ने किसी निगमित व्यक्तित्व का परदा हटाया था?

A. **डैमलर कंपनी बनाम कॉन्टीनेंटल टायर कंपनी (1916) AC**।

Q. एक हिंदू देव प्रतिमा के विधिक व्यक्तित्व के संबंध में सत्य कथन क्या हैं?

A. 1. एक हिंदू देव प्रतिमा न्यायिक व्यक्तित्व है।
2. देव प्रतिमा के लिए स्थापित धर्मदाय के संबंध में शाश्वता के विरुद्ध नियम लागू नहीं होता है।
3. एक हिंदू देव प्रतिमा का व्यक्तित्व केवल लाभार्थ ही स्वीकार्य नहीं है बल्कि यह दायित्व भी उत्पन्न कर सकता है।

Q. ''एक हिंदू प्रतिमा का धर्मदाय में लाभकारी हित होता है''। यह कथन सत्य है अथवा असत्य?

A. असत्य (**देवकी नंदन बनाम मुरलीधर (1956)** का निर्णय कि किसी हिंदू देव प्रतिमा का धर्मदाय में लाभकारी हित नहीं होता है और वास्तविक हिताधिकारी केवल पुजारी होता है)।

Q. 'निगम' एक प्राकृतिक व्यक्ति है या 'विधिक व्यक्ति' या दोनों?

A. **विधिक व्यक्ति**।

Q. समष्टि निगम किसे कहते हैं?

A. समष्टि निगम सहविद्यमान व्यक्तियों का निगमित समूह होता है।

Q. भारत में समष्टि निगम के दृष्टांत क्या हैं?

A. 1. भारतीय रिज़र्व बैंक,
2. जयपुर विश्वविद्यालय,
3. नगर निगम, अजमेर।

Q. भारत में एकल निगम का प्रतिनिधित्व कौन करता है?

A. **भारत के राष्ट्रपति**।

Q. सोलोमन बनाम सोलोमन एंड कं. लि. नामक वाद विधिशास्त्र की किस अवधारणा पर निर्णीत वाद है?

A. **विधिक व्यक्ति की अवधारणा** पर।

Q. इंग्लैंड में सम्राट की विधिक स्थिति क्या है?

A. **एकल निगम** की।